भक्त हृदय के उद्‌गार..

क्योंकर मानूँ हे राम मेरे, तुम पापी तारनहारे हो।
मानूँगी हे राम मेरे, मुझ पतित का जो उद्धार करो।।

कब से हूँ तुझे पुकार रही, पिया अब तो आओ न।
अनुचित यह मन पथ भूल गई, तुम राह दिखाओ न।।

न्यून भक्ति गर मेरी हो, पिया तुम ही इसको पूर्ण करो।
साधन भक्ति और साधना, राम मेरे बस तुम ही तो हो।।

कभी सोचूँ मैं क्यों तुमको, कहूँ राम तुम आन मिलो।
क्या तुम इस दुखिया के मन की, बात न अब तक जानत हो।।

आज प्रभु इस दिल में मेरे, वार नया है होने लगा।
अब लग तू जो न आया, विश्वास प्रभु मेरा खोने लगा।।

पात्र कुपात्र मैं न जानूँ, इस तन को भी अब दरस दिखा।
यह मन कब सों है रो रहा, इस मन में प्रभु तू आ ही जा।।

- परम पूज्य माँ

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, ११/४, द्वितीय अध्ययन
(२६.८.१९६६)

अनुक्रमणिका

१. *भक्त हृदय के उद्गार..*

३. *इस को आप ही ने निष्कलंक किया, 'मैं' से उबार कर..*
श्रीमती पम्मी महता

९. *अजन्म है वह जन्म रहित, उपाधि रहित है परम सत्..*
'मुण्डकोपनिषद्', द्वितीय मुण्डक १/२

१३. *स्वर्गदायिनी अग्न-विद्या..*
(नचिकेत द्वारा त्रै-अग्न ज्ञान की याचना)
'कठोपनिषद्' पर आधारित

१९. *..जो भी कर्म करना ज़रूरी हो, वह करते जाना!*
अर्पणा प्रकाशन 'श्रीमद्भगवद्गीता - भगवद् बाँसुरी में जीवन धुन' में से..
श्रीमद्भगवद्गीता २/४५-४७

२५. *'सोऽहमास्मि' न कह सकूँ*
सत्संग पर आधारित

२९. *'कर्मण्येवाधिकारस्ते' कैसे?*
परम पूज्य माँ से 'पिताजी' के प्रश्नोत्तर

३४. *उठ! और जाग!*
श्रीमती शान्ता देवी

३७. *अर्पणा समाचार पत्र*

❖ ❖ ❖

सम्पादक की ओर से

गद्य में प्रस्तुत सभी लेख साधकों के प्रश्नों के उत्तर में परम पूज्य माँ द्वारा प्राप्त सत्संगों पर आधारित हैं और संकलन-कर्ता की निजी समझ के अनुकूल हैं। काव्य की पंक्तियाँ पूज्य माँ के मुखारविंद से प्रवाहित दिव्य प्रवाह का अंश हैं; जिसे सुश्री छोटे माँ ने लेखनीबद्ध किया है। अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुति में किसी भूल के लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

सम्पादक : *पूनम मलिक*
सह सम्पादक : *श्रीमती साधना पाल*

पता : अर्पणा आश्रम, मधुबन, करनाल
१३२ ०३७, हरियाणा, भारत

श्री हरीश्वर दयाल, अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन, करनाल १३२ ०३७ ०१, हरियाणा द्वारा दिसम्बर २०२० को प्रकाशित तथा सोना प्रिन्टर प्राईवेट लिमिटेड, एफ -८६/१, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली ११० ०२० द्वारा मुद्रित

इस को आप ही ने निष्कलंक किया, 'मैं' से उबार कर..

श्रीमती पम्मी महता

हे भुवनेश्वर, इस आंतर बाहर में आप ही आप व्याप्त हैं!

आपको शतः शतः प्रणाम देई करी, पुनः पुनः देती हूँ!

हे श्री हरि माँ, आप से पाया यह दिव्य व अनमोल जीवन-प्रसाद.. हृदय की गहराइयों में उतर, स्वयं को, सदा के लिये इस हृदय को आप धरोहर बना देते हैं। आइये, इसी अपनी दी धरोहर को इसके जीवन बहाव में बहा लीजिये।

हे माँ, गर इस देन को हृदय से स्वीकार किया है तो आप स्वयं इसके साक्षी हैं। इस लिये आप ही से विनयपूर्वक प्रार्थना करती हूँ कि अपने इस नाम-धन को ही हर रूप में

अर्पणा मन्दिर में, श्रीमती पम्मी महता एवं अन्य सत्संगी

बहा लीजियेगा! मैं नहीं चाहती आप से पाये इस दिव्य प्रसाद को दूषित कर लूँ.. जानती हूँ, यह अपनाने की धरोहर नहीं। इसे तो ज्यों का त्यों आंतर से बहने को ही सभी मिला है.. जीवन में धारण हो कर ही इसकी पावनता बनी रहेगी।

आपके नाम की महिमा का सामगान ज्यों का त्यों बना रहेगा। हे श्री हरिनाथ, इसे यूँ ही सनाथ किये रहियेगा। हे श्री हरि माँ, आप ही तो सदैव मेरे सहायी रहे हैं.. उसी सत्य का आप माँ प्रभु जी को वास्ता देती हूँ, यारब आप ही इसे धारण करवाइयेगा।

हे माँ, आप कहते थे मुझे, अब तुम्हें ही चलना है.. अब तक आप ही आपके क़दमों को चलते देखती आई है, उन्हें कैसे अपना लूँ मैं.?! यह तो कभी नहीं चाहेंगे मेरे लिए कि इन्हें अपनाने का अपराध करी, आप श्री हरि माँ को ही गँवा लूँ.. जिन्हें युगों-युगों के बाद पाकर ही आप माँ प्रभु जी से अनुगृहित हो रही हूँ! हे परम वन्दनीय परम पूज्य माँ, अब के ऐसा न होने दीजियेगा.. जो जीवन आपकी कृपा से आपकी अमानत हो गया है; इसे आप ही ने तराश करी अपने अनुरूप ढाला है। हे करुणाकर, इसे 'मैं' में लौटने नहीं दीजियेगा!

परम पूज्य माँ

इसे आपने अपने हृदय से, अपने हाथों से व अपने क़दमों से नवाज़ा हुआ है.. यही तो मेरे जीवन की परम यथार्थता है। आप ही ने हृदय में कोमल-कोमल भावनायें भरी हैं, आप ही ने पत्थर को पिघला कर इस हृदय में अपने नाम के अजपाजाप को भरा है। हृदय-वीणा पर अपने ही स्वर साधे हैं.. अपने नाम की अपरम्पार महिमा का सामगान सुना कर इसे सींचा है.. क्या आपके साक्षित्व में रहते हुये, इन्हें झुठला सकती हूँ। नहीं न, माँ! इस कलंकित को आप ही ने निष्कलंक किया 'मैं' से उबार कर.. आप माँ प्रभु जी के अनन्त आशीर्वादों से नवाज़ी हुई हूँ; जिसे आपने इसके जीवन में आ, कभी भी कुछ भी 'मैं' से शुरु ही नहीं होने दिया!

जिसकी सुबह आप ही से शुरु होकर कब शब में ढल जाती थी, पता ही नहीं चलता था। सच पूछिये तो, आप माँ का कृपा प्रसाद ही है.. जिसे मेरी हर शब से सहर व सहर को शब में ढलने के लिए आप ही की हे परवरदिगार, रहनुमाई मिलती रही। यही सिलसिला आज तलक चलता ही चला जा रहा है।

इसे आपकी अलौकिक देन का नाम न दूँ तो क्या नाम दूँ, आप ही बताइये न माँ! ईश्वरीय देन को कोई नाम देकर आपके अनुरागी मन व प्यार को कैसे छोटा कर सकती हूँ.. इसे तो बहुत ही अदब व प्यार देती हूँ! इसे सिजदे में धर कर ही सिजदा देती

परम पूज्य माँ के साथ हँसी के कुछ पल..

रहती हूँ। जिस मुहब्बत ने इबादत को हाथ उठा लिये उस आपकी मुहब्बत को भला कोई और नाम दिया जा सकता है, नहीं न माँ.?! इसीलिए बारम्बार आप ही से विनीत अरदास करती हूँ।

हे मन को अमन की राह पर लिवा ले जाने वाले, अब इस 'मैं' में इसे कभी भी लौटने नहीं दीजियेगा, क्योंकि..

'अभी तो 'मैं' मेरी बाक़ी है, तोसों लग्न मेरी हुई नहीं'।

आप ही ने बताया 99 तक जाकर भी हम लौट सकते हैं। इस यथार्थता का प्रमाण भी है कि हम ही जन्म-जन्मान्तर से आपको छोड़ने का गुनाह करते आये हैं। मगर धन्य हैं आप, जो युगों से इंतज़ार करते आ रहे हैं कि कभी न कभी, किसी रोज़ तो यह आ जायेगी लौट कर.. आपकी पावन प्रीत का यही तो प्रमाण है.. जिसका हाथ आपने स्वयं थामा हुआ है भला वह हाथ को कब तक ignore कर सकता है कोई!

आपकी प्रीत की डोर हमें नचा तो सकती है, मगर आपके हाथ में होने से हमें खेंच अवश्य लाती है.. क्योंकि आंतर मन आख़िर सच्चाई को कब तक झुठला सकता है.. एक दिन आप स्वयं ही इसे जागृत कर लेते हैं। आपका रहमोकरम कितना बेज़ुबां है..

मगर मौन की आवाज़ किस क़दर गूँजती है और खेंच कर लिवा ले जाती है.. आपके क़दमों में! हम आप ग़रीबनवाज़ की नवाज़िशों को क्यों पा जाते हैं! इसीलिये न कि आप का प्यार, आपकी मुहब्बत, आपके रहमदिल, आपकी रहनुमाई ने हमें अपनी आँखों से कभी ओझल ही नहीं होने दिया!

आपके प्यार में तो कभी कमी आई ही नहीं.. मगर हम, सारी तोहमतें लगा कर व कलंकित कर के आपको, अपने को justify करते रहे। कब तक कर पाते.. एक दिन तो हमारी guilt ने हमें लानत डालनी ही थी। जैसे ही हमारी पुकार में आर्तता का समागम हुआ आपने आवाज़ देकर बुला लिया.. फिर अपने समेत अपना सभी कुछ बाँटने लगे। हम 'सर' तभी उठा लेते हैं, जब हम जानते हैं कि आप दोष तो लगाते ही नहीं, न जीव को.. न परिस्थितियों को.. उसका फ़ायदा केवल हम स्वार्थी मानस की जात ही उठाती है। क्योंकि अपनी चतुराई समझ कर अपने से ही फ़रेब करने लगते हैं..

अपने को smart समझता है यह मन! मूर्ख यह नहीं जानता, उस प्रभु के खाते में लिखे हमारे कर्मों का हिसाब आप माँ प्रभु जी से कहाँ छिप पाता है। जिसने विधान को स्वयं ही रचा है, उनसे क्या छिपा है? फिर भी अपने आंतर की स्वार्थता को देखने की जगह, माँ, हम आप निर्दोष को.. आप निष्कलंक को.. दोष मढ़ते ही चले जाते हैं। हमें लगता है, हम जीत रहे हैं या हमारी चतुराई काम आ रही है..

सच तो यह है, सत्य की स्थापना के लिये किसी शै व जीव की ज़रूरत नहीं होती.. वह तो अपने आप में स्थित है! उसकी गरिमा का प्रकाश सभी को आच्छादित कर लेता है। हम स्वयं उसकी तरफ़ पीठ करके स्वयं को विमुख कर लेते हैं.. कितने बदनसीब हैं हम!

याद आते हैं शुरु शुरु के वह दिन.. जब तलक मामा मेरे (मेरे mother), आपसे मिले नहीं थे.. लेकिन बातें बनाते थे आपके प्रति! मेरे जीवन में आप पूर्णतया आ चुके थे। आपके प्रति कोई भी दोष लगाता, तो मुझे अच्छा नहीं लगता था। मैंने अपनी मामा के बारे में एक बार आप से बात करी तो आपने कहा, "पम्मी, मेरी defence पेश करने की ज़रूरत ही नहीं है तुझे.. तुम्हारी मामा मुझे जानती ही कितना है?"

पापा को मना मना कर, मना ही लिया कि एक बार मामा को जा तो लेने दो मेरे साथ.. पापा मान ही गये आख़िरकार। मैं मामा को सीधा आप माँ के पास ले कर आई और मामा से कहा, "अपने मन के सभी संशय दूर कर लीजियेगा.." मामा ने अपने सभी संशय एक-एक करके आप माँ के आगे रखे और आप ने हर संशय का जो भी उत्तर दिया उससे बहुत ही संतुष्ट हो गये थे मेरे मामा!

आपके जन्मदिवस पर, जब हम सब मिल कर आप माँ के प्रति श्रद्धांजलि पेश किया करते थे तो मेरी मामा ने अपनी हर ग़लती को लिखित रूप में क़बूल करते हुए अपने श्रद्धा-सुमन आपको भेंट किये। मुझे यह सभी जान कर व सुन कर बहुत ही अच्छा

लगा और यह और भी अच्छा लगा जब उसके बाद मैंने मामा को आपके विमुख होते नहीं देखा कभी भी!

धन्य हैं आप और आपका अनूठा प्रसाद!

इतना ही नहीं, इसके पश्चात् आप माँ ने मामा के जीवन की ऐसी सत्यता बखान की, जिसे मामा ने हमें कभी बताया ही नहीं था.. मानो जैसे उनके जीवन की पत्री, उनके वहम साक्षात् सभी के सामने खोल दिये। मामा की इतनी तारीफ़ करी व मुझे homework दिया.. "जा पम्मी, अपनी मामा से जाकर उनकी कहानी सुन! she is the pivot of the family.." कितने दिन लगे मुझे, उन्हें मनाने के लिए.. कि वह अपने जीवन के बारे में बतायें। वह तो मुँह तक खोलने को तैयार नहीं थीं। जब मैं बहुत ही गिड़गिड़ाई, तभी मामा ने अपनी जीवन की किताब के पन्ने खोलने शुरु किये।

कितनी हैरतज़दा थी मैं कि आप माँ बिन जाने उन्हें इतना जानते हैं और हम साथ रह कर भी नहीं जान पाये! आपका बहुत बहुत शुक्रिया अदा किया.. आपकी करुण-कृपा का अनूठा प्रसाद मिल गया आपसे! आपने उनके आंतर की मलिनता को एक ही बारगी washoff कर दिया।

सच माँ, हमारे आंतरों को शुचि-पावन करने ही तो आप अवतरित होकर आते हैं। धन्य हैं आप हे सद्गुरु माँ प्रभु जी आप धन्य हैं - हरि ॐ

जो अंतर्यामी व आंतर के स्वामी हैं, उन्होंने ही अनुगृहित करी व निज कर में इसके कर लेई करी, कैसे कैसे सम्भाला है मुझे, जो जागते रहे हैं हर पल, हर क्षण मुझी को जागृत करने के लिए.. ऐसे जगदीश्वर जो मेरे स्वामी हैं उन्हीं का धन्यवाद करना है मुझे!

ऐसे श्री हरि जगद्जननी माँ की उपमा कहाँ ढूँढूँ, जो अपने आप में मुकम्मल हैं। उनके लिये आज तलक ढूँढने पर भी नहीं मिली कोई उपमा मुझे.. आप विभूति पाद से जो भी जीवन-धन पाया वह अतुल्य व विलक्षण तथा अनुपमेय है!

बार बार बारम्बार कृतज्ञता से यही तो कहना है मुझे हृदय-वीणा की हर तार बदल कर उस पर अपने ही स्वर साध दिये.. इन्हीं सधे स्वरों को बजना है इस निमानी के जीवन में! यही साध लिए, इन्हीं श्री हरि चरणन् पर मिटना है मुझे!

हे माँ प्रभु जी, जिस रोज़ यही स्वर ध्वनित हो जायेंगे इसके जीवन में तभी आपसे पाये इस परम आनन्द से भरपूर हो जाऊँगी।

हे श्री हरि माँ प्रभु जी, आप ही की होने का जो अनमोल अवसर व आशीर्वाद आप से मिला है.. हे करुणाकर, इसे कतई खोना नहीं है मुझे!

आप ही से धन्य-धन्य होती आई हूँ यूँ ही धन्य-धन्य हुई रहूँ!!

हरि ॐ ❖

अजन्म है वह जन्म रहित,

उपाधि रहित है परम सत्..

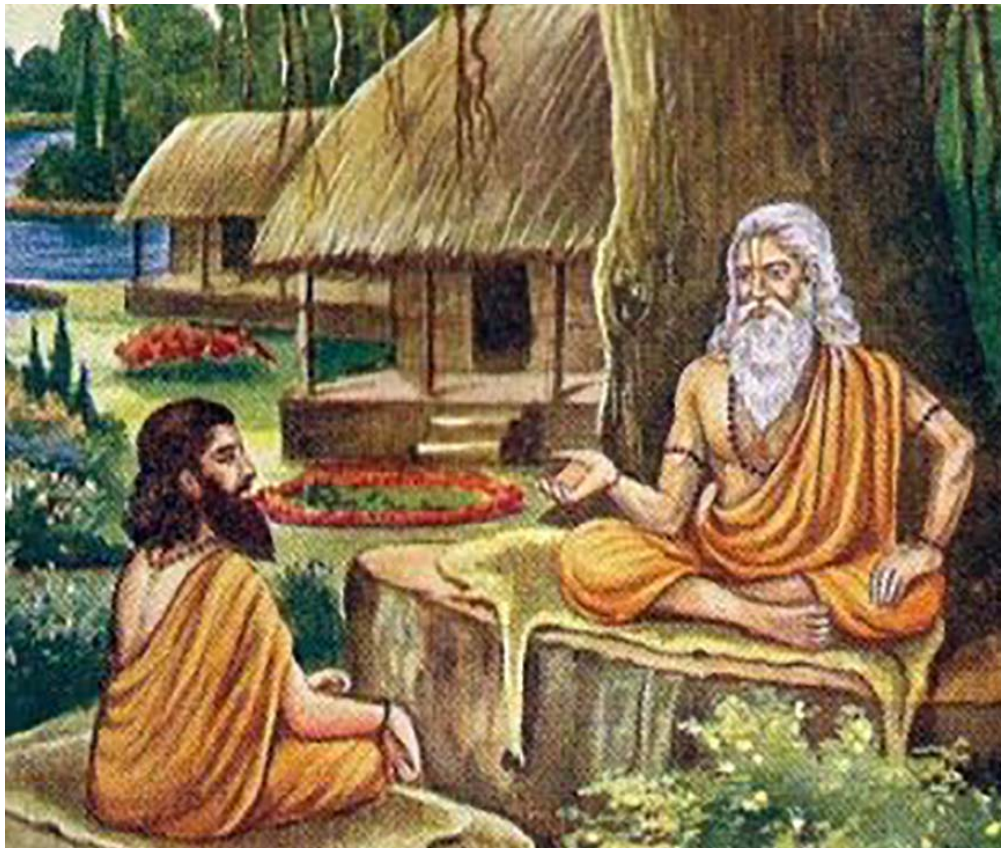

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।।

मुण्डकोपनिषद २/१/२

शब्दार्थः

निश्चय ही दिव्यपूर्ण पुरुष आकाररहित समस्त जगत के बाहर और भीतर भी व्याप्त जन्मादि विकारों से अतीत प्राणरहित मनरहित होने के कारण सर्वथा विशुद्ध है (तथा); इसीलिए अविनाशी जीवात्मा से अत्यन्त श्रेष्ठ है।

तत्व विस्तारः

वह दिव्य पुरुष परमेश्वर, अमूर्त है आकार रहित।
बाह्य आन्तर अखण्ड वह, एक तत्व बस रूप रहित।।१।।

अमूर्त भी मूर्त भी, आकार रहित आकार वही।
द्रष्टा का आकार वही, स्वप्नाकार कह लो वही।।२।।

जगत तो रे है ही नहीं, स्वप्न की स्थिति है क्या।
कहने को चाहे कह लो, स्वप्न द्रष्टा में स्थित हुआ।।३।।

स्वप्न में परिपूर्ण ज्यों, द्रष्टा ही बस होता है।
उसी विधि चाहे कह लो, परम ही पूर्ण होता है।।४।।

अजन्म है वह जन्म रहित, उपाधि रहित है परम सत्।
प्राणन् का वह प्राण है, मन रहित है परम तत्व।।५।।

विकार का प्रश्न ही नहीं रहे, बिन मन विकार ना रहे।
यह कहें विकार पुंज, ही तो जानो यह मन भये।।६।।

नितान्त विशुद्ध अखण्ड सत्, अविनाशी सों बहु परे।
जीवत्व भाव प्रकृति ईश, इन त्रै सों वह बहु परे।।७।।

नाम रूप उपाधिन् का, कण भर भी कहीं काम नहीं।
ज्ञान स्वरूप आप ही है, अज्ञान का भी नाम नहीं।।८।।

प्राण के गुण उसके नहीं, मन के गुण उसके नहीं।
इन्द्रियन् गुण उसके नहीं, तन के गुण उसके नहीं।।९।।

सगुण तन अक्षर कहें, कारण तन उसको कह लो।
बीज रूप पूर्ण जग का, जग तन इसको कह लो।।१०।।

पर मायिक माया में यह है, परम सत्त्व इनसों परे।
काया रूप विकार रहित, मन रूपी स्वभाव परे।।११।।

कारण तन सों भी वर्जित, मायापति रे माया परे।
कारण सूक्ष्म स्थूल परे, प्राण मन इन्द्रिये परे।।१२।।

स्वप्न रे जिस पल द्रष्टा का, एक भाव ही होता है।
समस्त स्वप्न में जड़ जंगम, द्रष्टा रूप ही होता है।।१३।।

पर द्रष्टा वह नहीं नहीं, द्रष्टा उससे बहु परे।
सब हो कर वह द्रष्टा रे, स्थूल रूप से दूर रहे।।१४।।

अखण्ड रस अरे सत्त्व है वह, जो है सब कुछ वह ही है।
पर जो देखे तू इस जग में, सत् समझो रे वह ही है।।१५।।

स्वप्न चित्र में मूर्ख, द्रष्टा काहे हेरे है।
माना स्वप्न के दृश्य को, द्रष्टा ही रे घेरे है।।१६।।

परम अधिष्ठान है वह, सर्वोपरि है सर्वश्रेष्ठ।
जीवत्व भाव से बहु परे, जीवत्व भाव से बहु श्रेष्ठ।।१७।।

परिशुद्ध अमूर्त वह, परिपूर्ण रे वह ही है।
सर्व परे वरद है वह, वरेण्यम रे वह ही है।।१८।।

अक्षर कारण तन को कहें, उससे भी वह है परे।
जीव भाव अक्षर जो कहें, उससे भी वह है परे।।१९।।

जीवत्व भाव वा बिम्ब कहो, अविनाशी ही होता है।
लय उसी में हो जाये, उसमें ही फिर खोता है।।२०।।

देख कहें वह स्थूल जग, सूक्ष्म कारण से है परे।
जो है सब इक वह ही है, अखण्ड रस अखण्ड रहे।।२१।।

महाभूत तन्मात्रा वह, ईश्वर भाव भी वह ही है।
हिरण्यगर्भ विराट है वह, प्रज्ञा भी रे वह ही है।।२२।।

तैजस भी स्वभाव भी, मनोमय भी वह ही है।
आन्तर प्रज्ञा वह ही है, आन्तर लोक भी वह ही है।।२३।।

बाह्य जग का सूक्ष्म रूप, स्थिति जान ले वह ही है।
लय अवस्था इन सबकी, कारण तन भी वह ही है।।२४।।

आन्तर बाह्य स्थित है वह, सर्व व्यापक वह ही है।
बस रे मन तू जान ले, वह कुछ नहीं पर वह ही है।।२५।।

सर्वोत्तम अखण्ड तत्व, एक रस रे वह ही है।
स्वयंभू विभु भूमा वह, परिपूर्ण इक वह ही है।।२६।।

जड़ शब्द अरे जड़ जग, जड़ माया रे वह ही है।
सूक्ष्म तन मन जान ले, जग छाया भी वह ही है।।२७।।

सब होकर वह मौन ही है, सर्वश्रेष्ठ इक वह ही है।
महा मौन ही भाषा है, मौन भाव इक वह ही है।।२८।।

बार बार वह यही कहें, एक तत्व रे वह ही है।
सुन रे मना अब जान ले, अखण्ड रस रे वह ही है।।२९।।

दिव्य पुरुष उसको रे कहें, दिव्य ही जन्म रे उसके हैं।
जिस विध भी वह जन्म ले, सब जन्म ही उसके हैं।।३०।।

सब जन्मे सब जन्म ले, फिर भी जन्म रहित रहे।
समझ सके तो समझ ले, सब मन हो कर मन परे।।३१।।

ज्ञातव्य बस वह ही है, प्राप्तव्य बस वह ही है।
अखण्ड तत्व बस वह ही है, परम सत्त्व बस वह ही है।।३२।।

अव्यय सत् परम चेतन, विश्व रूप बस वह ही है।
विश्वात्म वह सर्वात्म, परम रूप इक वह ही है।।३३।।

मनो खिलवाड़ रे छोड़ दे, जान ले सब बस वह ही है।
कर्म धर्म सों अहम् त्यजो, कर्तृत्व भाव इक वह ही है।।३४।।

महा मौन ही कर्ता है, करके कुछ भी ना करे।
पूर्ण मन वह हो करी, मनो मौन भी ना भये।।३५।।

भाव भी है अरे मन भी है, पर उनसे वह है परे।
उसको गर रे पाना है, मन त्यजी कर जान ले।।३६।।

वह कर्मातीत वह शिव रूप, विश्वेश्वरा भी वह ही है।
वह राम रूप वह कृष्ण रूप, जग जगदेश्वरा भी वह ही है।।३७।।

स्थूल सूक्ष्म अरे कारण वह, सर्व परे रे वह ही है।
वा चरण गहे ही जान सके, अरे जो है बस वह ही है।।३८।।

१०-९-६१

स्वर्गदायिनी अग्न-विद्या..

(नचिकेत द्वारा त्रै-अग्न ज्ञान की याचना)

निम्नलिखित "कठोपनिषद्" की झलक परम पूज्य माँ द्वारा गायन रूप में प्राप्त इस उपनिषद् की विस्तृत व्याख्या पर आधारित है। काव्यांश परम पूज्य माँ के मुखारविन्द से प्रवाहित दिव्य प्रवाह में से लिये गये हैं। इस क्रम में हम पहले दो अंकों में २ संकलन प्रस्तुत कर चुके हैं। अब तृतीय अंश प्रस्तुत है :

पूर्वांश -

(नचिकेत को प्रथम और द्वितीय वर प्रदान करके उसकी परीक्षा हेतु यमराज ने संसार के सम्पूर्ण वैभव तथा प्रलोभन उसके सम्मुख धरे - परन्तु दृढ़ निश्चयी, आत्मतत्व जिज्ञासु नचिकेत इनसे विचलित न हो कर आत्मतत्व जानने के लिये अपने निश्चय पर अटल रहा, तो यमराज ने जीवन के दो मार्गों - श्रेय और प्रेय का विवरण उससे किया तथा उसे आत्मतत्व के लिये योग्य पात्र जानकर अब आत्मतत्व का उपदेश करने लगे। इस अंक में

हम यमराज द्वारा नचिकेत को दिये गये आत्म-विषयक ज्ञान का श्रवण करेंगे।

यमराज नचिकेत से कहने लगे -

"आत्म तत्व की क्या कहें, दुर्लभ श्रवण ही है इसका।
उससों दुर्लभ वह रे है, यथार्थ मनन रे है जिसका।।

कोई बिरला इस जग में, राज़ यह पहचाने है।
वक्ता वह रे मिले नहीं, जो इसको रे जाने है।।

तीक्ष्ण बुद्धि भी पा ले, शब्द ज्ञान भी हो जाये।
ऐसा वक्ता कहाँ मिले, प्रतिमाये ज्ञान हो जाये।।

अनुभव जब लग नहीं हुआ, जानो समझ ही ना आया।
मनो मौन तुम क्या समझो, वृत्ति मौन ना कर पाया।।

दुर्लभ दर्शन है उनका, परम को जो जान गये।
ऐसा वक्ता कहाँ मिले, उपदेश मिले और जान गये।।

वक्ता भी इस विद्या का, अत्यन्त दुर्लभ होता है।
वक्ता मिले फिर श्रवण हो, समझो वह दुर्लभ होता है।।" १/२/७

सर्वप्रथम तो इस आत्म-विषयक ज्ञान का वक्ता मिलना ही अति दुर्लभ है। यह ज्ञान शब्दों में बधित नहीं हो सकता.. यह केवल अनुभव गम्य है। ज्ञान स्वरूप और ज्ञान की प्रतिमा रूप आत्मतत्व का वक्ता मिलना अति दुर्लभ है। फिर केवलमात्र श्रवण से ही इस ज्ञान को नहीं जान सकते.. उसके लिये मनन तथा निदिध्यासन द्वारा अहंकार का मिटाव अनिवार्य है –

"सूक्ष्मतर सूक्ष्म है यह, अल्पज्ञ कह ही ना पाये।
लाख चाहे तू मनन करे, आविर्भूत ना हो पाये।।

ब्रह्म वेत्ता सों श्रवण करो, फिर निरन्तर चिन्तन हो।
मनन भी हर पल इसका हो, अपने आप में जान लो।।

तर्कातीत वह भावातीत, तन मन बुद्धि सों यह परे।
वही पाये इस ज्ञान को, जो इन सब सों हो परे।।

वाद विवाद सों ना जाने, वाद के स्वर सों है परे।
बुद्धि भी ना पा सके, बुद्धि तर्क सों है परे।।

शब्द खिलवाड़ ही छोड़ दे, भाव परिवार छोड़ दे।
परम पद गर पाना है, तू अपना आप भी छोड़ दे।।

अज्ञान आवरण यह ही है, अहंकार ही छोड़ दे।
अहम् स्वरूपा यह मन तेरा, अहम् प्रवाह री छोड़ दे।।

अरे मन बुद्धि के देश में, परम तत्व ना आ सके।
मन बुद्धि उससों है रंगी, रंग यह देख ना पा सके।।

साधना आन्तरिक होती है, बाह्य साधना नहीं नहीं।
आप में आकर आप मिले, अरे बाहर मिले वह नहीं नहीं।।

सच तो यह ले पुनः कहें, आन्तरिक में तव ज्ञान है।
मन मन्दिर में देख ज़रा, विराजित रे राम हैं।।

वैराग्य की गंगा में जाकर, बाह्य मल तो धो लेना।
संग मोह और लग्न रे राम, इन सब को रे धो लेना।।" १/२/८

आत्म-विषयक अतिगूह्य ज्ञान के याचक के अनिवार्य गुण तथा आन्तरिक स्थिति का वर्णन करते हुए यमराज़ स्वयं दुर्लभ, जिज्ञासु शिष्य नचिकेत से कहने लगे –

"महा कृपा तुझ पे हुई,
राम ने यह प्रदान करी।
निर्णय शक्ति दृढ़ निश्चय,
संग विरक्ति दान करी।।

श्रद्धापूर्ण असूय रहित,
वीत राग वैरागी हो।
ऐसा शिष्य रे उसे मिले,
जो रे बहु सुभागी हो।।

जिज्ञासा इतनी चाहिए,
लग्न हिय में एको हो।
मुमुक्षु उसे ही कहते हैं,
चाह हिय में एको हो।।

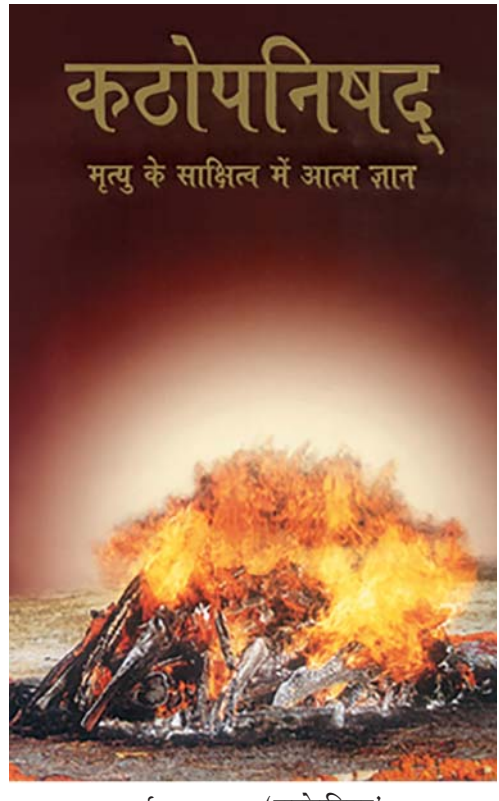

अर्पणा प्रकाशन - 'कठोपनिषद्'
मृत्यु के साक्षित्व में आत्म ज्ञान

विशुद्ध आत्म हो जाओ, निर्मल सरल चित्त री हो।
शिशुवत् निःसंशय हो मन, साधक शुद्ध चित्त री हो।।

गुमान भाव सब ज्ञान छोड़, राम का राम पे छोड़ दे।
अनिवार्य मृत्यु इस तन की, यह भी भगवान पे छोड़ दे।।

एकान्त में आ इक वृत्ति हो, सर्ववृत्ति सहयोगी भये।
एक लग्न ही रह जाये, एक का भोगी भये।।

साधना देखो यह ही है, वृत्तियाँ सब सुर में आ जायें।
राम गीत वह सब मिलकर, एक गीत में गा पायें।।

हो एक ध्वनि जब पूर्ण की, महा प्रवाहित हो जाये।
इक पल में पूर्ण लग्न, संग में मन ही धो जाये।।

इक दिन राम रे आयेंगे, आत्म कृपा रे होगी।
निज को जान ही जायेंगे, परम की कृपा रे जब होगी।।" १/२/९

वास्तव में यज्ञ, तप और दान द्वारा निर्मल चित्त हुआ दृढ़ निश्चयी साधक ही उस परम द्वार तक जाने का अधिकारी है..

"अनित्य संग का त्याग ही, परम द्वार ले जायेगा।
अनात्म को री छोड़ दे, आत्मतत्व रह जायेगा।।

नचिकेता अग्न चयन, यज्ञ तप और दान कहे।
पावन करी यही कहे, संकल्प विकल्प रहित भये।।

यज्ञ में कर्म रे भस्म हुए, चाहना संग ही चली गई।
तप में हँस कर सब सहा, दुःख सुख भाव चली गई।।

दान में मैं का दान दिया, उसका उसको दे दिया।
भावना का यह खेल है, ना ले लिया ना दे दिया।।

अन्तःकरण निर्मल भया, मन में नहीं कोई भाव रहा।
संकल्प विकल्प के द्वन्द्व गये, बाक़ी बस रे आप रहा।।

अनित्य त्यजी नित्य पाये, यह ही एको राह है।
दृढ़ निश्चयी हो साधक आ, गर परम की चाह है।।" १/२/१०

शास्त्र कथित यह अनादि और अनन्त आत्मतत्व अतेन्द्रिय, अग्राह्य और बुद्धि सों परे है। हृदय गुहा में स्थित महागुह्य इस आत्मतत्व के अन्वेष्णार्थ इस वृत्ति समूह रूप जंगल को भस्मीभूत करना अनिवार्य है। इस जंगल में रहते हमें उस आत्मतत्व का दर्शन व अनुभव दुर्लभ ही नहीं अपितु असम्भव है –

"परम पुरातन सनातन, आदि अन्त सों रहित है यह।
काल लोक सों बंधा नहीं, पूर्णतः पूर्ण है यह।।

बुद्धि सों वह है परे, नयन वहाँ ना पहुँच सकें।
अतीन्द्रिय वह है मन सों तो, वह तो परे रे दूर रहे।।

फिर भी हिय गुहा बसे, आप से आप अरे है यह।
दृष्टि अगोचर राम मेरे, सब जा पर बसे हैं यह।।

शुद्ध बुद्धि चित्त निर्मल हो, संकल्प विकल्प जो मौन भये।
तव हृदय सों प्रकाश स्वरूप, ज्योति बन कर प्रकट भये।।

राग द्वेष जो त्यज आये, हर्ष शोक सब दूर हुए।
परम तत्व क्या जान लिया, परम में ही स्थित हुए।।

ब्रह्मचर्य रे यह ही है, पूर्ण विषय ही त्याग दे।
बाह्य विषय की बात नहीं, आन्तरिक भी रे त्याग दे।।

सनातन वह नित्य है वह, महा गुह्य रे वह ही है।
दुर्दर्शम् दुर्लभ वह, प्राप्तव्य रे वह ही है।।

गुहा में प्रविष्ट कहें, हृदय बन में रे रहता है।
वृत्ति समूह वह जंगल है, जहाँ वह छिप कर बैठा है।।

ढूँढे वह रे नहीं मिले, इसे जलाना ही होगा।
भस्म करी इस मन को, तुझे अंग लगाना ही होगा।। " १/२/१२

आत्मतत्व की दुर्लभता, उसके लिये योग्य पात्रता व सहयोगी आन्तरिक स्थिति की बात बताकर अब यमराज नचिकेत को सम्पूर्ण साधना का रहस्य वा साधक के परम लक्ष्य ओम्कार की बात सुझाते हैं –

"सम्पूर्ण वेद रे मिली मिली, जिस पद का गान रे करते हैं।
अनेक बार जिस तत्व का, वह प्रतिपादन करते हैं।।

संक्षेप सों तुझको रे कहूँ, ओम् इसे ही कहते हैं।
सुन ले मना तू सुन ले ज़रा, मेरे राम ही कहते हैं।।

हृदय में इसका वास है, जग इसकी ही छाया है।
रचना करे उपसंहार भी, उसकी ही तो माया है।।

साधना का प्रयोजन बस, ओम्कार को पाना है।
जीवन ध्येय बस यह है, ओम् में लय हो जाना है।।

ओम् प्रतीक है राम का, ज्यों राष्ट्र पताका होती है।
नाम अक्षर ब्रह्म की, जानो यह ही होती है।।

साधना का यही मन्त्र है, इसे ध्याये ही परम मिले।
ओम् लक्ष्य है साधन भी, ओम् का साधक भजन करे।।

ओम् नाम पुकारे रे, द्वार खुल ही जाते हैं।
ओम् ही जिसका नाम है, उस परम पुरुष को पाते हैं।।

एक अक्षर यही तो है, प्रणव इसे ही कहते हैं।
पूर्ण रे प्रतिपादन करे, ओम् ओम् ही कहते हैं।।

पथ प्रदर्शक यह ही है, परम पद भी यह ही है।
साधक रे तुम जान लो, परम सत भी यह ही है।।

ओम् गुरु यही लक्ष्य मेरा, ओम्कार को पाना है।
इक चाहना बाक़ी रहे, उसमें ही समाना है।।

ओम् लक्ष्य है ओम् साधना, ओम् को ही रे पाना है।
ओम् में ही फिर स्थित हुए, लय वहीं हो जाना है।।

काष्ठ में अग्नि ज्यों रे बसे, अग्न लगे वही रूप धरे।
जल जल काष्ठ तो राख भये, अग्न स्वतः निर्रूप भये।।

संसार काष्ठ में अग्निवत्, साधना निहित रहती है।
साधना में यह जग जले, फिर ख़ुद ही मिट यह जाती है।।

जो भी करो जो भी चाहो, परम नाम न त्यजना रे।
पल छिन सुन रे जो भी हो, नाम यही तुम भजना रे।।

हृदय से नाम यह लेना रे, हर स्वास ओम् का जाप करे।
ओम्कार में मिलना है, मनोमन उसे याद करे।।" १/२/१५,१६ ❖

जैसी भी परिस्थिति आये,
उसमें जो भी कर्म करना ज़रूरी हो, वह करते जाना!

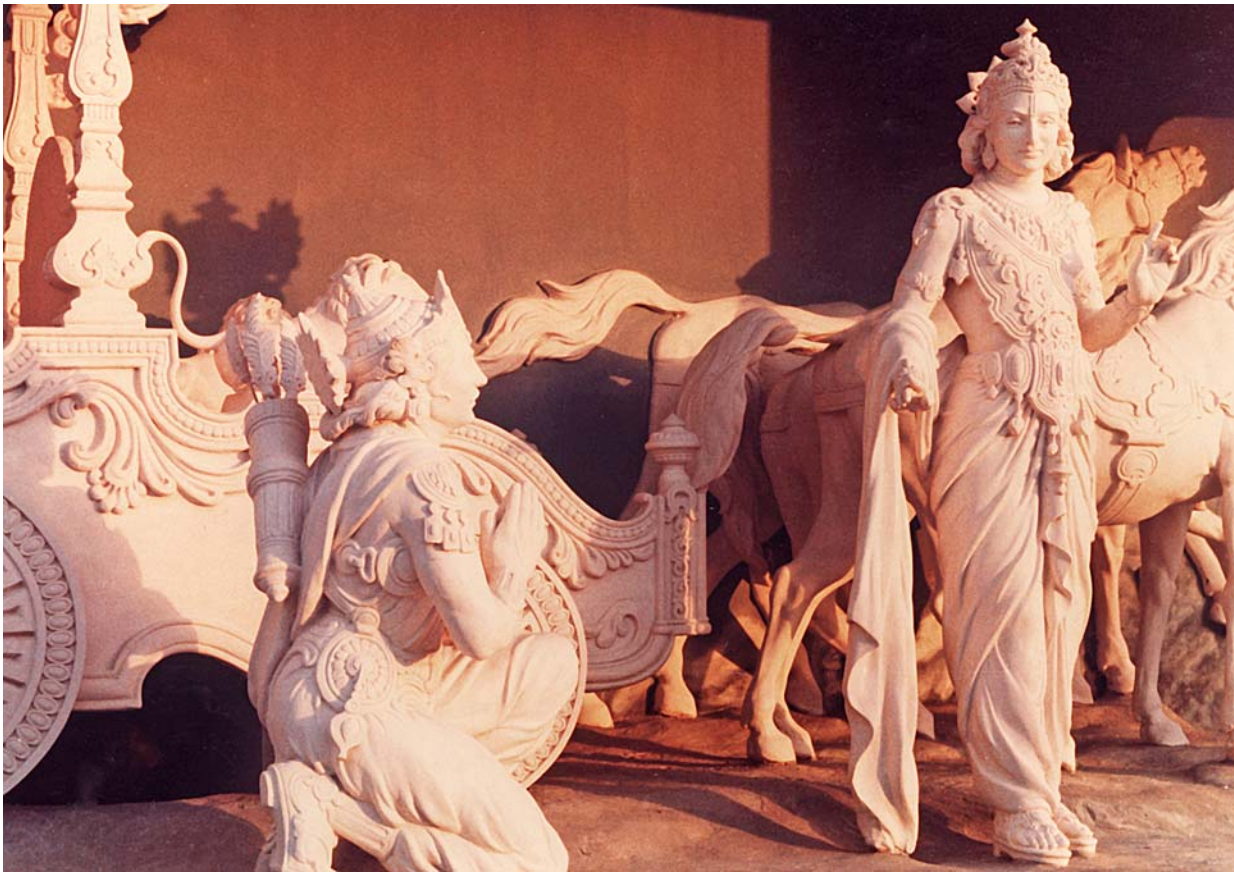

त्रैगुणयविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।

श्रीमद्भगवद्गीता २/४५

यहाँ भगवान कहते हैं कि :

शब्दार्थ :

१. वेदों के सम्पूर्ण विषय त्रिगुणमय हैं,
२. हे अर्जुन! तू त्रैगुण से उठ,
३. निर्द्वन्द्व, नित्य सत्त्व स्थित,
४. निर्योगक्षेम और आत्मवान बन।

तत्व विस्तार :

वेद ज्ञान रूप विषय ही है।

पहले वेद का अर्थ समझ ले!

१. वेद ज्ञान को कहते हैं।
२. वेद बुद्धि को भी कहते हैं।
३. वेद समझ को भी कहते हैं।
४. प्रत्यक्ष ज्ञान को भी वेद कहते हैं।
५. अनुभव करने को भी वेद कहते हैं।
६. विद्वान को भी वेद कहते हैं।
७. बुद्धिमान को भी वेद कहते हैं।
८. पण्डितगण को भी वेद कहते हैं।

भगवान यहाँ कह रहे हैं कि वेद का विषय :

क) त्रिगुणात्मक होता है।
ख) जितना ज्ञान जहाँ भी है, वह त्रैगुण पूर्ण ही है।
ग) जितने विषय जहाँ भी हैं, वे त्रैगुण पूर्ण ही हैं।
घ) जितने रूप जहाँ भी हैं, वे त्रैगुण पूर्ण ही हैं।
ङ) शब्द विषयों की ही बात कर सकते हैं, सो ये त्रैगुण पूर्ण ही हैं।
च) वाक्य विषयों की ही बात कर सकते हैं, सो ये त्रैगुण पूर्ण ही हैं।
छ) भाव का रूप भी त्रिगुणमय होता है।
ज) पूर्ण जहान भी त्रिगुणमय होता है।
झ) तन भी तो त्रिगुणमय होता है।
ण) मन भी तो त्रिगुणमय होता है।
ट) बुद्धि भी तो त्रिगुणमय होती है।
ठ) ज्ञान भी तो त्रिगुणमय होता है।

नन्हीं! एक आत्मा ही है, जो न ही किसी गुण का विषय है और न ही उसे कोई गुण छू सकते हैं।

१. आत्मा ज्ञान का विषय नहीं।
२. आत्मा बुद्धि का विषय नहीं।
३. आत्मा शब्द बधित नहीं हो सकता।
४. आत्मा मन का विषय नहीं।

विषय त्रिगुणात्मक होते हैं। जो किसी का विषय नहीं, वह गुण रहित है।

वेद भी आत्मा को वाक् बधित नहीं कर सकते। आत्मवान भी आत्मा को वाक् बधित नहीं कर सकते। आत्मवान बन सकते हैं किन्तु वह क्या है, कह नहीं सकते। आत्मवान, निर्गुणी, गुणातीत, गुणपति तथा अखिल गुणी होते हैं, इन्हें समझना अतीव कठिन है।

भगवान यहाँ अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! तू :

क) निस्त्रैगुण बन,
ख) निर्द्वन्द्व बन,
ग) नित्य सत्त्व स्थित हो,
घ) निर्योगक्षेम हो,
ङ) आत्मवान बन।

क) निस्त्रैगुणी :

१. त्रैगुण से अप्रभावित, गुणातीत,
२. अपने गुणों से अप्रभावित,
३. दूसरे के गुणों से अप्रभावित,
४. जिसे गुणों से संग न हो,
५. जो सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों के प्रति उदासीन हो,
६. जो आसुरी गुणों और दैवी गुणों के प्रति भी उदासीन हो।

ख) निर्द्वन्द्व :

दो विरोधी अवस्थाओं को, दो विरोधी भावनाओं को, दो विरोधी गुणों को द्वन्द्वपूर्ण कहते हैं।

निर्द्वन्द्व वह होगा - जो दो विरोधी भावों के प्रति उदासीन होगा, जो दो विरोधी गुणों से नित्य अप्रभावित रहेगा।

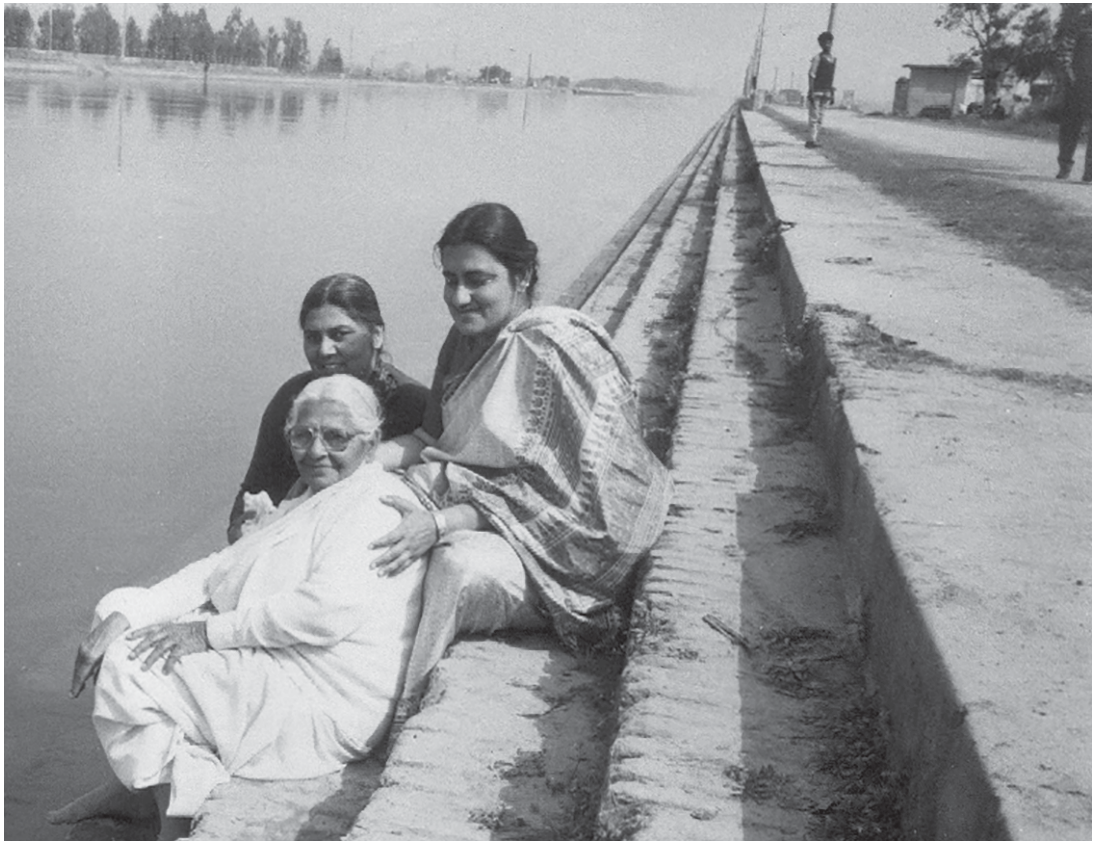

अतीत की कुछ यादें..
परम पूज्य माँ के साथ सुश्री मंजु दयाल एवं आभा भंडारी (नन्हीं)

१. जो सुख दुःख से नित्य अप्रभावित हो।
२. जो राग-द्वेष से नित्य अप्रभावित हो।
३. जो हर्ष-विषाद से नित्य अप्रभावित हो।
४. जो विजय और पराजय से नित्य अप्रभावित हो।

ग) नित्य सत्त्व में स्थित, अर्थात् :

१. नित्य सिद्धान्तों पर स्थित रहने वाला,
२. नित्य धर्म के अनुकूल वर्तने वाला,
३. नित्य सर्वोत्तम भद्रता का अनुसेवन करने वाला,
४. नित्य परम गुण का सेवन करने वाला,
५. नित्य निष्काम भाव में रहने वाला,
६. सर्वभूत कल्याण करने वाला,
७. श्रेष्ठ कार्य करने वाला,
८. यज्ञमय जीवन बिताने वाला,
९. क्षमा, दया, धृत्ति, धैर्यपूर्ण, नित्य सत्त्व में स्थित रहने वाला।

घ) निर्योगक्षेम :

'योग' का यहाँ अर्थ है, अप्राप्त की प्राप्ति की चाहना करना और 'क्षेम' का यहाँ अर्थ है, प्राप्त वस्तु की रक्षा करना।

यानि :

१. 'यह पाना है', ऐसा भाव नहीं होना चाहिये,
२. 'यह पाऊँगा', ऐसा भाव नहीं होना चाहिये,
३. किसी कामना के वश में नहीं होना चाहिये,
४. नित्य किसी विषय के संरक्षण में नहीं लगे रहना चाहिये।

ङ) आत्मवान :

१. मेरी नन्हीं लाडली! जो जीव निस्त्रैगुण होगा, वह गुणातीत होगा ही।
२. जो जीव गुणातीत होगा और निर्द्वन्द्व होगा, वह मन से अप्रभावित होगा ही।
३. और जो क्षेम की परवाह नहीं करेगा, वह विषयों के प्रति उदासीन होगा ही।

ऐसे जीव का अपने तन से संग नहीं होगा और अपने गुणों से संग नहीं होगा। वह तनत्व भाव के परे आत्मवान होगा ही। यानि वह अपने आपको तन न मान कर आत्मा मानने वाला होगा। वह तन के मान-अपमान रूपा द्वन्द्वों से परे होगा। वह सुख-दुःख रूपा द्वन्द्व से नित्य अप्रभावित रहेगा। तन को कुछ मिले न मिले, इसकी वह परवाह नहीं करेगा। लोगों के गुणों से वह नित्य अप्रभावित रहेगा। अपने भी तन के गुणों से संग न होने के कारण, वह उनसे भी अप्रभावित रहेगा। तन की स्थिति श्रेष्ठ है या न्यून काज में लगा हुआ है, इसकी ओर वह ध्यान ही नहीं देगा।

तो क्यों न कहें वह देहात्म बुद्धि त्यागी, आत्मवान होगा ही! भगवान अर्जुन को आत्मवान बनने का आदेश दे रहे हैं।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।

श्रीमद्भगवद्गीता २/४६

अब भगवान कहते हैं :

शब्दार्थ :

१. **सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर,**
२. **एक छोटे से जलाशय का जितना प्रयोजन रह जाता है,**
३. **अच्छी प्रकार आत्मा को जानने वाले के लिये,**
४. **सम्पूर्ण वेदों का उतना ही (प्रयोजन) रह जाता है।**

तत्व विस्तार :

अब भगवान अर्जुन से कहते हैं कि जब तू आत्मवान हो जायेगा, तब यह सम्पूर्ण जहान, जो त्रिगुणात्मक है, तुम्हारे लिये निरर्थक हो जायेगा। इसका उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार जिसने एक महान जलाशय पा लिया हो, उसे छोटे छोटे जलाशयों से कोई प्रयोजन नहीं रहता, वैसे ही जो आत्मवान पण्डितगण होते हैं, उन्हें वेदों से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।

यहाँ वेदों पर आक्षेप नहीं किया किन्तु कहा है कि आत्मवान के लिये वह निरर्थक हो जाते हैं, क्योंकि वह ज्ञान की प्रतिमा स्वयं बन जाता है, फिर उसे ज्ञान की ज़रूरत नहीं रहती।

नन्हीं! बात तो ठीक ही है! तन के नाते ही :

१. जीव को सम्पूर्ण संसार के विषयों की आवश्यकता पड़ती है।
२. जीव के पास रुचि या अरुचि होती है।
३. जीव दुःख-सुख का उपभोग करता है।
४. जीव का मान या अपमान होता है।
५. जीव द्वन्द्वों में फँसता है और दुःखी-सुखी होता है।
६. जीव दुःख या कोई कमी मिटाने के लिये अन्य प्रकार का कुछ पठन करते हैं।

जो तनत्व भाव को त्याग कर आत्मवान बन जाते हैं, वे तो तन की ही

परवाह नहीं करते। वे तन की चाकरी नहीं करते। वे तन को स्थापित करना नहीं चाहते। वे तन के सुख-दुःख और मान-अपमान की परवाह नहीं करते, उनके लिये किसी विषय की प्राप्ति या अप्राप्ति कोई अर्थ नहीं रखती। उनके लिये ज्ञान या अज्ञान कोई अर्थ नहीं रखता।

भई! वे ज्ञान पढ़ कर भी क्या करेंगे? ज्ञान तो उन्हीं के गुण गाता है। वे वेद पढ़ कर भी क्या करेंगे? वेद तो उनके जीवन की बताते हैं। वे तो वेदों की प्रतिमा आप हो जाते हैं। वे तो वेद रस सार का रूप आप ही होते हैं। उनका जीवन ही वेद है, उनका वचन ही ज्ञान है। उनका स्वरूप ही वेद होता है, उनका रूप ही वैदिक ज्ञान होता है।

वेद रूपा ज्ञान सत् पथ दिखला सकता है किन्तु सत् पथ-पथिक को तो आत्मवान बनना है। वेद रूपा ज्ञान-अज्ञान मिटा सकता है किन्तु आत्मवान तो स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। वेद रूपा ज्ञान चित्त निर्मल कर सकता है किन्तु निर्मलता की तुला तो आत्मवान है। वह आत्मवान वेद की प्रतिमा होते हैं। गर शास्त्र ज्ञान कभी समझ में न आये तो उस आत्मवान की जीवनी को सामने रख लो, सब राज़ खुल जायेंगे।

भई! आत्मवान के लिये वेद कोई अर्थ नहीं रखते क्योंकि वह स्वयं वेद है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

श्रीमद्भगवद्गीता २/४७

शब्दार्थ :

१. **कर्म में ही तेरा अधिकार है,**
२. **फल में अधिकार नहीं है तुम्हारा,**
३. **कर्मफल हेतु कर्म न करो,**
४. **अकर्म में भी तेरा संग नहीं होना चाहिये।**

तत्व विस्तार :

नन्हीं! कर्म पे है अधिकार तेरा, तुझे :

१. आत्म तत्व को पाना है।
२. दैवी गुण का अभ्यास करना है।
३. तन सों उठ जाना है।
४. सदा निष्काम भाव से कर्म करने का अभ्यास करना है।
५. अभ्यास तब ही हो सकेगा, जब तू कर्म करेगी।
६. तनत्व भाव त्याग का अभ्यास भी तो जीवन में ही हो सकता है।
७. यज्ञमय जीवन यज्ञ किये ही हो सकता है।
८. अहं मिटाव भी जान लो, झुक-झुक के ही हो सकता है।
९. चाह रहितता का अभ्यास कर्तव्य करने से ही हो सकता है।
१०. तन दान दो, मन दान दो, बुद्धि दान दो, तब ही सत् जान सकोगे।
११. जीवन में, दिनचर्या में, कर्म राही प्रमाण देख कर ही आपकी स्थिति का पता चलता है।

फल की चाहना छोड़ दे :

क) फल चाहना से बँधा जीव तन से नहीं उठ सकता।

ख) गर तन के लिये कुछ भी फल चाहते हो तो तन से उठना असम्भव है।

ग) गर चाहना फल की है तो दैवी गुण कभी नहीं आयेंगे।

घ) गुण प्रभाव से कोई फल चाहते हो अथवा फल में कोई गुण चाहते हो तो गुणातीत कैसे हो पाओगे?

ङ) यदि कोई भी गुण अभी तुझे प्रभावित करते हैं तो तुम गुणातीत कैसे हो पाओगे?

च) रुचि के कारण यदि फल चाहते हो तो द्वन्द्वों से कैसे उठोगे? तब तो रुचिकर से आपको संग हो जायेगा।

छ) गर रुचि ही प्रधान रही तो रुचि से कैसे उठ पाओगे? रुचि अरुचि से तुम उठ नहीं सकोगे।

फिर फल पर तेरा अधिकार नहीं :

१. जय मिले, पराजय मिले, कौन जाने?

२. परिणाम कर्म का क्या होगा, कौन जाने?

३. रेखा निर्माण हो चुका, आपको तो रेखा के अनुकूल ही मिलना है।

४. जो मिलना है मिल जायेगा, पर क्या मिलेगा, यह कौन कह सकता है?

५. जो जाना है निश्चित जायेगा, उसे तुम रोक नहीं सकते।

६. आधुनिक पर ही तेरा अधिकार है इसलिये इस पल धर्मयुक्त कर्म कर। जो होना है होता ही जायेगा, उस पर ध्यान धरना मूर्खता है।

अकर्म से संग तुम मत करो :

१. भावना से कर्तव्य श्रेष्ठ है।

२. जीवन में सत्त्व का प्रमाण देना ज़रूरी है।

३. दिनचर्या में अपने कर्मन् में परम स्थिति का अभ्यास करो।

४. कर्तव्य से पलायन करने से क्या बनेगा?

५. यदि कर्म छोड़ दोगे तो अभ्यास कहाँ करोगे?

६. बातों में कहोगे ब्रह्म को जान लिया, जिसे कोई जान नहीं सकता, उसे जान लिया परन्तु इससे स्थिति कभी नहीं पाओगे।

७. उसको तो वही जाने, जो वैसा ही हो जाये और वैसा ही करे।

८. प्रमाण तो जीवन का चाहिये।

९. जीवन ज्ञान समान ही चाहिये, वरना भ्रम में ही रह जाओगे।

१०. ज्ञान का अभ्यास जहान में चाहिये और अपने जीवन में चाहिये।

तनत्व भाव से उठने का अभ्यास करने के लिये तन किसी को दे दो। दैवी गुण के अभ्यास के लिये जन सम्पर्क अनिवार्य है। गुणातीत का प्रमाण तुम गुणों में रह कर ही दे सकते हो। स्थितप्रज्ञता का प्रमाण तुम विपरीतता में रह कर ही दे सकते हो।

गर नित्य अपने तन का और तनो व्यवस्था का ही ध्यान लगा रहे तो जीव भगवान के तत्व को नहीं जान सकता। फल की चाहना करने वाला लोभी बन जाता है और जब वांछित फल नहीं मिलता तो क्रोधी भी बन जाता है।

किन्तु नन्हीं! तुझे तो आत्मवान बनना है। तुम्हारे लिये तो इतना ही काफ़ी है कि जैसी भी परिस्थिति आये, उसमें जो भी कर्म करना ज़रूरी हो, वह करते जाना। गर भगवान के साक्षित्व में कर्म करोगी तो ठीक ही करोगी। तुझे अपना तन भगवान के लिये देना है, उसमें लाभ हुआ या हानि हुई, इस पर ध्यान न धरना। अपने धर्म तथा कर्तव्य पर नित्य दृढ़ रहना।❖

'सोऽहमास्मि' न कह सकूँ

(एक भक्त की भगवान से बातें)

सारे ज्ञान और वेदान्त की पराकाष्ठा अपने अस्तित्व को 'ब्रह्म' में लय कर देने में है। 'मैं नहीं तू' - वेदान्त यहाँ तक ले जाता है और भक्ति यहीं से आरम्भ होती है।

परम पूज्य माँ का तथाकथित साधना काल हमारे लिये साधना प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है। भागवद् प्रेम में स्निग्ध भक्त हृदय इस वेदान्तिक तथ्य - 'ब्रह्म से एकत्व' की बात करने में भी संकोच करता है, क्योंकि उसका अपना तो कोई अस्तित्व है ही नहीं!

इसी प्रक्रिया की एक झलक हमें 'ईशावास्योपनिषद्' के निम्नलिखित श्लोक के पठन पर, पूज्य माँ के द्वारा भगवान के सम्मुख प्रकट किये गये भाव उद्गारों में मिलती है-

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य, व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।।

(ईशोपनिषद् - श्लोक १६)

शब्दार्थः

हे पोषणकर्त्ता, हे मुख्य ज्ञान-स्वरूप, सबके नियन्ता हे सूर्यदेव, हे प्रजापति के प्रिय! इन रश्मियों को एकत्रित कीजिये (हटा लीजिये), इस तेज को समेट लीजिये। जो आपका अतिशय कल्याणमय दिव्य स्वरूप है, उसको मैं आप की कृपा से देख रहा हूँ। जो वह है, वह परम पुरुष आपका ही स्वरूप है, मैं भी वही हूँ।

(साधकगण की जिज्ञासा के प्रत्युत्तर में उनको समझाने के लिये ईशोपनिषद् के उपरोक्त श्लोक का जो विस्तार परम पूज्य माँ के मुखारविन्द से १९५९ में प्रवाहित हुआ, उसमें हमें भक्त-हृदय के उद्गार का दर्शन होता है। ऋषि के वाक् से अपने जीवन की दूरी

देख कर हार्दिक व्यथा तथा उस श्लोक को अपने जीवन में उतारने की झलक हम इस विस्तार में पाते हैं।)

परम पूज्य माँ -

सूर्य ब्रह्म का प्रतीक है, हम सूर्य से ही पुष्टि पाकर जीते हैं। भगवान ने गीता के चौथे अध्याय के पहले श्लोक में कहा कि यह ब्रह्ममय ज्ञान सब से पहले उन्होंने सूर्य को दिया। सूर्य ही ब्रह्म का प्राकट्य है।

हे राम! मन में ज्योत जली और मैं तेरा यह कल्याण करने वाला स्वरूप देखने लग गया हूँ। मैं यह भी जान गया हूँ कि सम्पूर्ण सृष्टि को रचने वाला तू ही है और तेरा ही एक अंश मुझ में भी है, इस नाते से तू और मैं एक ही हैं। हे नाथ! मैं ने यह भी जान लिया कि तेरे और मेरे में कोई भेद नहीं।

गर जो तुम हो, सो ही मैं हूँ, फिर क्यों दूर रहो मुझसे?
हर क्षण पुकारूँ तुझे मैं राम, तुम क्यों न कभी बोलो मुझसे?

..जो तू है सो मैं हूँ नाथ, तो मुझे अपनाने में तुम्हें क्यों लाज आती है?

गर जो तू है सो ही मैं हूँ, तो क्यों तुम छिपते रहते हो?
मेरे नन्दलाला अब तुम ही कहो, गोपाल कहाँ तुम रहते हो?

हे नाथ! इस परोक्ष ज्ञान के बल बूते पर तुझे मैं हृदय में अवतीर्ण नहीं कर सकती, मुझ में सामार्थ्य नहीं परन्तु तेरे चरणों में ही आ बैठी हूँ।

किस मुँह से कहूँ जो तुम हो, सो मैं हूँ दीनानाथ।
तुम ही नित्य रे आते हो, मैंने कभी न दिया साथ।

इसी मन्दिर में ही,
परम पूज्य माँ का भगवान जी से प्रथम साक्षात्कार हुआ..

मैं इतनी तुच्छ, इतनी अल्पज्ञ, बलहीन हूँ, पर कितनी धृष्टता कर बैठी - "हे राम! जो तुम हो, सो मैं हूँ.." "सो अहमस्मि" यह कहने लगी और सब को धोखा देने लगी। अब यह कहते हुए मुझे लाज आ रही है। अभी तक तो मैं यह भी नहीं जान सकी कि मैं कौन हूँ?

जिन्होंने तुम्हें पाया है, उन्होंने बताया है कि 'जो राम हैं, वही मैं हूँ'। परन्तु मैं तो तम से आच्छादित हूँ। जन्म जन्मान्तर के शव संस्कार पड़ने से जो धुँधलापन आ गया है, उस के कारण मैं तुम्हें देख

परिवार के साथ.. परम पूज्य माँ मनमोहक मुद्रा में!

नहीं सकती। यह शवरोग मुझे खाये चला जा रहा है, इसके कीटाणु बढ़े चले जा रहे हैं। संस्कार रूपी कीटाणुओं से शवरोग की उत्पत्ति होती है, कर्मों का प्रभाव पड़ने से कीटाणु और बढ़ जाते हैं और नव जीवन में और पलते चले जाते हैं। मैं इन कीटाणुओं में खोई हुई हूँ और यह तन छननी कर रखा है।

देखो राम! कितना अनर्थ है - जिसका मन तमावृत्त है, जिस की बुद्धि मन की दासी बन चुकी है, वह कहता है - कि मैं श्रेष्ठ हूँ, "मैं राम ही हूँ"। कुछ समझ नहीं आता कि तुझे क्या कहूँ? भगवन! मुझे इन बातों से कोई प्रयोजन नहीं, यह ज्ञान की बातें मुझे नहीं आतीं। तू मेरा है बस यही जान कर तुझे पाना है। तूने गीता में कहा है - "मेरे जैसी बन" तू ही मुझे अपना बना, तब ही मैं वैसी बनूँगी नाथ!

क्योंकर जाऊँ पास तेरे, यह मैं जानूँ ना।
पर तुम नहीं हो नाथ मेरे यह मैं मानूँ ना।।

जो तुम हो सो मैं हूँ प्रभु, यह उपनिषद् कहें।
क्योंकर अनुभव कर पाऊँ, क्योंकर हम कह यह सकें?

हम राम शरण में आये हैं, ज्ञान तो पास नहीं।
तुम को निज बल से पाऊँगी, यह मुझे को आस नहीं।।

राम तुम्हीं अब करुणा करके, दर्शन देना मोहे।
तुम ही नाथ करुणा करो, बार बार कहूँ तोहे।।

जग की छवि ने मोह लिया, तुम से मुझ को दूर किया।
तू भी मुझ से रूठ गया, मुझे परम धाम से दूर किया।।

हे नाथ! कुछ कुछ समझ आने लगी - तू किस कारण नहीं मिला! मुझे घमण्ड हुआ कि "जो तू है, सो ही मैं हूँ"। हे राम! तू ही मुझे बता, जो सन्तजन यह कहते हैं, वह क्यों कहते हैं? मेरी समझ में नहीं आता। क्या वह इसलिए ऐसा कहते हैं कि वह भक्ति की उच्च पराकाष्ठा पर पहुँच चुके हैं? परन्तु भगवन! मैं तुच्छ तो कभी भी आप की पात्र नहीं बन सकूँगी, मुझे तो केवल इतना ही पता है :

तू ही मेरा देव है, तू ही मेरा नाथ है।
तू ही मेरा सर्वस्व है, तेरी ही मुझको आस है।।

मन में तू है बस रहा, पर दूर खड़ा तू हँस रहा।
मुझे समझ नहीं आया, इसमें भी तेरा हाथ है।।
और तेरा मेरा साथ है।।

हे राम! तू जानते हुए शरारत करता है! अच्छा कोई बात नहीं :

समझ गई तूने जो कहा, अरे अब न बोलूँगी।
इस भाव में तूने बन्द किया, अब मुख न खोलूँगी,
अब मैं न बोलूँगी।।

हे राम! मुझे बता - मेरा तेरे सिवा क्या कोई और भी है? यह तेरा मेरा खेल अनादि है, कभी तू मुझे ढूँढता है और करुणा के हाथों से पकड़ लेता है। कभी मैं तेरे चरण पकड़ कर तुझे निहारती हूँ, कभी तू फिर से ओझल हो जाता है, और मैं दौड़ती फिरती हूँ, तुझे ढूँढती फिरती हूँ।

आज ऐसे लगता है हे राम! मैंने बहुत जन्म साधना करी है पर राम, तुम मुझे नहीं मिले, अब थक कर तेरे चरण में आ बैठी। तुम दूर खड़े हँस रहे हो और कहते हो "मैं तो यहीं खड़ा था; मैं तो हर क्षण तेरे संग ही रहा, तू जहाँ भी आगे आगे जाती थी, मैं तेरे पीछे पीछे आता था। जब हताश हो तू गिर जाती थी, तो मैं तुझे उठाता था, तुझे ठोकर से बचाता था, तेरी राह से काँटे हटाता था। तुझे अपने बल पर मान रहा, पर मेरा तुम में ध्यान रहा। इक बार भी तूने दिल से नहीं कहा 'हाय राम मेरे, तू आ भी जा'। गर प्रेम से मुझ को बुला लेती तो तू मुझको पा लेती। कभी इस विषय का आसरा ले, कभी उस चाहना की तड़पन ले तू पुकारे मुझे - कुछ सोच ज़रा कब मिले मुझे?

क्या करूँ मैं राम मेरे! आवाज़ तेरी मैं सुनती हूँ, पर पकड़ नहीं पाऊँ तुझे। हे राम! मैं कैसी कुमति हूँ! अन्दर - बाहर सब जा देखूँ, पर तू दीखे न। राम! मैं क्या करूँ? तेरे सम्मुख खड़ी तुझे न देख सकी हे राम! कहाँ पर जाये मरूँ - अब शाम भई मेरे जीवन की! मौत मेरी आने को है; दिन में जब तुम्हें पा न सकी तो मौत के अँधियारे में क्या पाऊँगी?

हे राम! सुना है "जो तुम हो, सो मैं भी हूँ" तेरी सजातीय हूँ। राम तुम ही मुझे आन कहो, किस विध तुम को आन मिलूँ? ❖

सत्संग शास्त्र - १, ७-६-५९

‘कर्मण्येवाधिकारस्ते’ कैसे?

परम पूज्य माँ के साथ उनके पिता जी और श्रीमती कमला भंडारी

पिता जी - शास्त्र में कहा है :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

श्रीमद्भगवद्गीता २/४७

अर्थात्- *कर्म में ही तेरा अधिकार है, फल में अधिकार नहीं है तुम्हारा, कर्मफल हेतु कर्म न करो, अकर्म में भी तेरा संग नहीं होना चाहिये।*

प्रश्न - ‘कर्मों पर जीव का अधिकार है, कर्मफल पर नहीं।’ पर मैंने सुना है कि कर्म भी जीव के वश में नहीं, यह तो रेखा का खेल है। फिर यह कहना कि ‘कर्मण्येवाधिकारस्ते’, इसका क्या मतलब हो सकता है?

प्रश्न अर्पण

कर्मन् पे अधिकार तेरा, फल पे तव अधिकार नहीं।
फल पे चित्त तू नहीं धरो, अकर्म से संग करो नहीं।।३।।

गर रेखा है कर्म आधार, कर्म अधिकार फिर क्या होगा।
श्याम वह तूने जो कहा, स्पष्ट अर्थ तू ही समझा।।२।।

तत्व ज्ञान

जब लौ जीवन है कर्म है, जीवन कर्म प्रणाली है।
त्रैगुणात्मिका जीव है, स्वभाव भी कर्म प्रणाली है।।३।।

परिस्थिति भी आयेगी, तव गुण उठ ही आयेंगे।
जस गुण तेरे होयेंगे, स्वतः वह वर्ते जायेंगे।।४।।

जीवन का प्रमाण कर्म, जब लौ प्राण हैं होयेंगे।
लाख चाहो तुम नहीं करो, विवश भी यह होयेंगे।।५।।

गुण खेंच ले जायेंगे, स्वभाव रोक नहीं पाओगे।
पर जो भी हो कुछ न कुछ, तो तुम करते जाओगे।।६।।

अर्जुन से कहा कृष्ण ने, युद्ध में जब वह था खड़ा।
दुश्मन पूर्व ही मर चुके, तू क्यों उनसे भाग रहा।।७।।

गर कहे युद्ध नहीं करूँ, स्वभाव विवश करा लेगा।
रेखा का यह खेल है, गुण गुण से टकरा लेगा।।८।।

मैं कर्म करूँ या नहीं करूँ, दोनों से संग अब छोड़ दे।
विधान में जो होता है, उससे नाता तू जोड़ दे।।९।।

कर्म अध्यक्ष तू आप है, चित्त लगा कर करना तू।
कर्मफल की चाह त्यजी, अनासक्त होई के करना तू।।१०।।

श्रेष्ठ भी जो भगवान भी जो, सहज कर्म वह करते हैं।
विधान में जैसा मिल जाये, अनुरूप होई के करते हैं।।११।।

सिद्धि असिद्धि भूल करी, योग स्थित होई कर्म करो।
ब्रह्म से योग गर हो जाये, विधान से फिर तेरा योग हो।।१२।।

रेखा साधक कैसे कहे, कर्तृत्व भाव अभी वहाँ पे है।
भोक्तृत्व भाव पूर्ण वह है, अहंकार अभी वहाँ पे है।।१३।।

चाह संग और राग द्वेष, मोह अज्ञान भी वहाँ पे है।
'मैं' अभी पूर्ण कर्म करे, रेखा पे त्याग अभी कहाँ पे है।।१४।।

ज्ञान-विज्ञान सहित

जीव कोण से कहते हैं, साधक को वह कहते हैं।
कर्ता निज को जो माने, उस अहं पूर्ण को कहते हैं।।१५।।

रेखा से गर भिड़ जाओ, दुःख ही दुःख तुम पाओगे।
वरना गुण वर्तें गुणन् में, तुम सत्य यह देखे जाओगे।।१६।।

जब 'मैं' तनो संगी हो, तनधारी निज को मानो।
स्थूल कर्म उस तन के जो, सगरे आपुनो ही मानो।।१७।।

उस साधक को समझाने को, वा रोक टोक मिटाने को।
कहीं पथ भूल ही न जाये, उसे जीवन में टिकाने को।।१८।।

श्याम देख हैं कह रहे, कर्म त्याग न करना अब।
कर्मफल को भूल करी, सम्पूर्ण कर्म तुम करना अब।।१९।।

समझ मना तू समझ सही, जीवन प्रवाह बहता जाये।
परिस्थिति अनुकूल वर्तो, नाहक काहे तू सकुचाये।।२०।।

अधिकार तेरा है कर्मन् पे, रोक टोक तू काहे करे।
सहज कर्म तुम किये चलो, फल जो मिले सो मिला करे।।२१।।

साधक कर्म करे तो सही, साधक आगे बढ़े तो सही।
संग त्याग ही साधना है, जीव कर्म करे तो सही।।२२।।

अर्जुन जैसी हो मनोस्थिति, वा जैसी हो परिस्थिति।
मन को जो तेरे न भाये, जीवन में वह आयेगी।।२३।।

मोह भी उठी उठी आयेगा, वा का त्याग मन चाहेगा।
कायरता से हमरो भी, स्वभाव हरा ही जायेगा।।२४।।

हाथ पाँव तब शिथिल भयें, कर्म मुक्ति हम चाहेंगे।
कर्त्तव्य कर्म भी अनेक बार, हम मोह कारण ठुकरायेंगे।।२५।।

धर्म अधर्म को भूल करी, कर्तव्य जान नहीं पायेंगे।
वांछित फल जब नहीं मिले, कर्म त्याग हम चाहेंगे।।२६।।

अपमान से डर करके, विपरीतता में हम आयेंगे।
कर्त्तव्य त्याग कर फिर समझें, अनासक्त हो जायेंगे।।२७।।

जहाँ पे रुचिकर नहीं लगे, कर्म त्याग वहाँ करते हो।
कर्त्तव्य त्याग कर जान लो, तुम धर्म त्याग ही करते हो।।२८।।

विधान ने परिस्थिति रची, निरासक्त होई वहाँ मुक्त रहो।
संग त्याग जो कर पाये, वही तो जीवन मुक्त हो।।२९।।

योग स्थिति चाहे यह मन, राम को यह बुलाता है।
विपरीतता से फिर जाने क्यों, यह मन ही डर जाता है।।३०।।

वा गुण के अभ्यास को, परिस्थिति जो तुझे मिली।
भावना के ही आसरे, साधक क्यों तूने छोड़ दी।।३१।।

सिद्धि असिद्धि जो भी मिले, उसपे ध्यान तुम नहीं करो।
फल की चाहना छोड़ करी, जीवन में हर कर्म करो।।३२।।

जीवन इक कर्त्तव्य ही है, जीवन कर्म प्रवाह ही है।
राम को भी बस पाने की, यह जीवन इक राह ही है।।३३।।

वास्तविकता से काहे भिड़ो, क्यों पिण्ड छुड़ाना चाहते हो।
अहंकार मम मोह भरे, सोच तो लो क्या चाहते हो।।३४।।

गुण बंधे स्वभाव बंधे, कर्म तो होते जायेंगे।
तन चाहे जित भी रहे, कर्म तो रुक नहीं पायेगे।।३५।।

'मैं' है तो अधिकार भी है, कर्म हैं तो अपने कहो।
बस इतना यहाँ श्याम कहें, हर कर्म बस साधना हो।।३६।।

संग त्याग अभ्यास करो, कर्म से संग तुम नहीं करो।
फल की चाहना छोड़ करी, परम मिलन के यत्न करो।।३७।।

अकर्म से गर प्रीत होये, तमपूर्ण तू ही हो जाये।
विपरीतता को वही ठुकराये, मोह वश जो हो जाये।।३८।।

त्यागे कुछ न छुट सके, संग होये तो छुट जाता है।
कर्तृत्व भाव ही नहीं रहे, कर्तापन ही छुट जाता है।।३९।।

योग विधि भी यह ही है, हर गुण उपलब्धि इस राह हो।
सिद्धि असिद्धि में सम बुद्धि, निरासक्ति भी इस राह हो।।४०।।

योग स्थिति की राह यही, इसको साधक अब जान लो।
परिस्थिति हो सामने, यथा समर्थ तुम कर्म करो।।४१।।

परिस्थिति से भागे जो, साधना सफल नहीं होये।
एको गुण भगवान की, मन में उपजित न होये।।४२।।

क्षमा दया और करुणा, निर्भयता अभ्यास यहाँ।
निर्मम निर्मोह निःसंगता, का भी हो अभ्यास यहाँ।।४३।।

दया धर्म यज्ञमय जीवन, इस जग में ही हो सके।
अनुकूल मिले प्रतिकूल मिले, समदृष्टि यहीं हो सके।।४४।।

सो जैसा हो तुम कर्म करो, संग अकर्म से नहीं करो।
कर्म पे है अधिकार तेरा, इस राह राम को तुम पा लो।।४५।।

यह स्थूल कर्म की कहते हैं, आधुनिक कर्म की बात कहें।
आंतरिक कर्म की नहीं कहें, बीज रूप जो कर्म धरें।।४६।।

संग के कारण ही मन में, प्रतिद्वंद्व जो उठते हैं।
संग से प्राणा पा करके, कर्म बीज भी बनते हैं।।४७।।

साधक साधना इतनी है, जीवन को दूर से देख लो।
गुण गुणन् में वर्त रहे, संग त्यजी के देख लो।।४८।।

फल की चाहना छोड़ करी, जो कर्म तू करते जाओगे।
अभ्यास सों ही संग छूटेगा, तुम योग स्थित हो जाओगे।।४९।।

२.२.१९६७

उठ! और जाग!

श्रीमती शान्ता देवी

सुकून का ठौर - 'अर्पणा स्थली'

बचपन में प्रातः ही जब गली में से किसी भिक्षुक की मधुर ध्वनि के ये बोल, 'उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है' कानों में पड़ते तो मैं एकदम भाग कर खिड़की के पास आ जाती और उस पूरे गीत को ध्यान से सुनती और स्वयं से प्रश्न करती कि इसका क्या अभिप्राय है -

'जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।'

साधारण भाषा में तब मैं इतना ही समझ पाई थी कि जो सोते रहते हैं, वो खो देते हैं और जो जाग जाते हैं वे ही पाते हैं। लेकिन वह कौन सी वस्तु है जो वे खो देते हैं और कौन सी वस्तु है जो वे प्राप्त करते हैं, इस तत्व को समझने में कई वर्ष बीत गये।

शास्त्र में कहा है :

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

अर्थात् - *उठो, जागो और (श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर) उस वरने योग्य परब्रह्म परमेश्वर को जान लो।*

कठोपनिषद् का यह श्लोक भी वर्षों पूर्व मैंने सुना और पढ़ा था.. यह मुझे बहुत अच्छा भी लगा.. लेकिन 'उठ और जाग' का सुन्दर और ज्ञान-विज्ञान सहित सविस्तार विवेचन अर्पणा की पावन धरा पर बैठ कर और परम पूज्य माँ के सत्संगों को सुनकर ही मुझे इन प्रेरणादायक शब्दों का रहस्य कुछ कुछ समझ में आने लगा।

सच तो यह है कि हम दृष्ट रूप में जाग कर भी अपनी अज्ञानता व मोह की निद्रा में सोये हुए हैं। अपने जीवन का अमूल्य समय हमने व्यर्थ में ही अपने राग-द्वेष, चाहना-कामना, रुचि-अरुचि व पसन्द-नापसन्द की उलझनों में ही व्यतीत कर दिया है। स्थूल जगत में हमको ईश्वर ने सब सुख पदार्थ, रिश्ते-नाते, सब कुछ दिया। वे सब पाकर भी आज हम क्यों अशान्त हैं, बेचैन हैं, अतृप्त हैं और दुःखी हैं.. इसके कारण से हम अनभिज्ञ रहते हैं।

जीवन में मुझे कई बार धार्मिक स्थानों पर जाने, साधु-सन्तों के प्रवचन सुनने के अवसर मिले.. लेकिन वह शान्ति सदैव क्षणिक सिद्ध होती रही। आज ऐसा लगता है कि जन्म-जन्मान्तरों के किसी पुण्य के फलीभूत होने पर भगवान जी मुझे इस दिव्य आश्रम में ले आये और मेरे मन में उत्पन्न जिज्ञासा का समाधान करने का मुझे सुअवसर दिया। यह भगवान जी की मुझ पर असीम करुणा व अनायास अनुकम्पा है.. जो उन्होंने मुझे भगवती सरस्वती तुल्य पूज्य माँ का संरक्षण दिया है।

परम पूज्य माँ का जीवन हमारे समक्ष एक खुली किताब है जिसका प्रत्येक पृष्ठ बेमिसाल प्रमाणों से अंकित है। उनकी वाणी से निसृत धारा प्रवाह गंगा के समान निर्मल, स्वच्छ, शुद्ध एवं अमूल्य पारसमणि के सदृश है। उनके सम्पर्क में आकर स्थूल संसार तो सुखी हुआ ही, परन्तु इससे भी अधिक उन्होंने सम्पर्क में आने वाले हर प्राणी को राम नाम के रस में विभोर करते हुए, उसके आन्तर की मनोप्रवृत्तियों को झकझोरते हुए उसे आत्म-विश्लेषण की सहज राह की ओर प्रवृत्त किया। प्राणी-मात्र को राम रूप जानकर उनका प्रेम सबके प्रति समान भाव से बहता है।

'उसको भेजा राम ने, मुझे राम ही मिल गया'

उनके ही यह शब्द मानो उनके दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। वह पल भर में ही दूसरे के आन्तर में बैठ कर उसकी समस्या को जान लेते हैं और केवल शब्दों में ही उसका हल नहीं सुझातीं बल्कि उस परिस्थिति में उसे जीने का मार्ग-दर्शन कराती हैं। मेरे अपने जीवन का भी अनुभव ऐसा ही है।

'उठ और जाग'! इन शब्दों का सही अर्थ मुझे परम पूज्य माँ के सत्संग में ही कुछ कुछ स्पष्ट हो रहा है।

अपने ही आन्तर में निहित आत्मतत्व को हमारे अहंकार, संग, मोह इत्यादि विकारों ने आवृत कर रखा है। अपने ही मन, मान्यताओं और भावनाओं के कारण हम उस प्रकाश-स्वरूप से वंचित रह जाते हैं। यह मन ही बादल बन कर उस ज्योति-पुंज सूर्य के आलोक से हमें वंचित कर देता है। ऐसी अवस्था में सुख और आनन्द अपना जन्मसिद्ध अधिकार होते हुए भी हम निरन्तर दुःख-ग्रस्त रहते हैं। यह सम्पूर्ण जग राम की रचना होते हुए भी हम इसे 'मेरे और तेरे' में बाँट कर निरन्तर राग-द्वेष में पड़े रहते हैं। यह राग और द्वेष ही हमारे दुःख का मूल कारण हैं। परम पूज्य माँ हमें इनका निवारण करके अपने आत्मस्वरूप को पहचानने की राह दर्शाती हैं।

परम पूज्य माँ ने सदैव आत्म-विश्लेषण की सहज राह की ओर ही प्रवृत्त किया!

वह हमें ऋषि मुनियों के युग में पहुँचा कर उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता को हमारे लिए जीवन्त कर रही हैं। उनका समस्त जीवन मानो शास्त्रों की साकार प्रतिमा है और शास्त्रों की सार्थकता को प्रमाणित कर रहा है। उनको देख कर व उनकी वाणी सुनकर हम जैसे साधारण जीव भी शास्त्र कथित जीवन पद्धति का अनुसरण करने की प्रेरणा पाते हैं। एक तनधारी जीव किस प्रकार तनत्व भाव से ऊपर उठ कर निरासक्त, निर्विकार, निर्द्वन्द्व, निर्हंकार, नित्य निर्लिप्त व सर्वभूत हितकर हो सकता है यह सब मैं इनकी शरण में रह कर ही देख पा रही हूँ। इनका जीवन एक अखण्ड यज्ञ है। इनके जीवन को देखकर मुझे यह स्पष्ट हुआ कि हम कहाँ भूल कर जाते हैं, कहाँ फँस जाते हैं तथा हमारा लक्ष्य क्या है?

पूज्य माँ हमें विपरीतता में भी हँसकर जीना सिखाती हैं। स्थूल में अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियाँ विधि का विधान मानकर हमें उनको सहर्ष स्वीकार करना है। ऐसा स्वीकार करते हुए हमें केवलमात्र अपने दृष्टिकोण में ही परिवर्तन लाना है। प्रतिकार झंकार से दु:खी-सुखी होकर तो केवल हम अपनी शक्ति का ह्वास करते हैं। बाह्य जगत में सब कर्म जीवों के गुणों के आधार पर हो रहे हैं, यह जान कर पर दोषदर्शन का अभाव होता है। हमें तो हर पल आत्म-निरीक्षण करना है।

इस प्रकार पूज्य माँ हमें हमारी शोकग्रस्त, मानसिक दुर्बलता से निकाल कर नित्य कर्त्तव्य पथ पर चलने के लिये उसी प्रकार प्रेरित करती हैं जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने अर्जुन जैसे महारथी को एक शोकजन्य विषादपूर्ण एवं किंकर्त्तव्यविमुढ़ स्थिति से बाहर निकाला।

अज्ञान व अन्धकारमयी वृत्तियों से ऊपर उठ कर, जीवन के सत्य को जानने की प्रेरणा हमें परम पूज्य माँ दे रही हैं और उन की अनायास कृपा से मुझे 'उठ और जाग' शब्दों का रहस्य कुछ कुछ समझ में आने लगा है।❖

परम पूज्य माँ

अर्पणा
समाचार पत्र

अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन,
करनाल, हरियाणा
दिसम्बर २०२०

अर्पणा के आयोजन

उर्वशी दिवस

६२ वर्ष पूर्व, २ अक्तूबर १९५८ को, परम पूज्य माँ के मुखारविन्द से एक दिव्य प्रवाह प्रारम्भ हुआ। इस अभंग स्फुरणा के तेजोमयी ज्ञान के रूप में अनेक शास्त्रों का सविस्तार वर्णन किया गया। ५० वर्षों से भी अधिक, इस दिव्य प्रवाह की ज्ञान रूपा गंगा.. अधिकतर स्फुरित गायन के रूप में प्राप्त है। प्रत्येक जिज्ञासु को प्रबुद्ध करता हुआ यह ज्ञान, सत्-चित्त-आनन्द की ओर उनकी यात्रा को सक्षम बनाता है।

'उर्वशी'.. परम पूज्य माँ के द्वारा, उसी प्रवाहित दिव्य प्रवाह को दिया गया नाम है। प्रत्येक आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए यह एक प्रकाशस्तम्भ है जो किसी भी जाति, पंथ या धर्म के होने पर भी उन्हें अपने अन्तिम गंतव्य की ओर ले जाने में समर्थ है।

'उर्वशी', निर्विवाद रूप से सभी के लिए एक दिव्य संसाधन है.. जिसमें श्रीमद्भगवद्गीता एवं प्रमुख उपनिषदों का ज्ञानवर्धक विवेचन व सत्संगों द्वारा प्रश्नों एवं उनके उत्तरों का विशाल महासागर है। इसमें परम पूज्य माँ की भक्तिपूर्ण गहन प्रार्थनाएँ भी सम्मिलित हैं।

परिवार, पूज्य छोटे माँ को धन्यवाद देने के लिए इस वर्ष भी एकत्रित हुआ.. परन्तु कोविड-१९ के कारण कम संख्या में ही! आज पूज्य छोटे माँ के अनथक और अलौकिक प्रेमपूर्ण श्रम के परिणाम-स्वरूप ही 'उर्वशी' का यह अथाह भंडार लेखनी बधित रूप में साधक गण के लिए सुरक्षित है। उनकी इस प्रेमपूर्ण, अनुपम तथा अनमोल देन के लिए हम सदा उनके ऋणी हैं.. और रहेंगे!

दिल्ली के कार्यक्रम

कोरोना महामारी से अधिकांश शैक्षणिक संस्थान बंद कर दिये गये हैं। वर्तमान में मोलरबन्द स्थित 'अर्पणा ट्रस्ट सेन्टर' के कक्षा १-१२ के छात्रों के लिए Zoom और Google Meet पर ऑनलाइन कक्षाएँ संचालित की जा रही हैं।

अधिकांश छात्र अपने माता-पिता अथवा निकट संबन्धियों के स्मार्टफोन के माध्यम से इससे लाभांवित हो रहे हैं।

१९ छात्रों की स्मार्टफोन तक पहुँच नहीं थी, इसलिए वे अपनी पढ़ाई में पिछड़ रहे थे। यह एक बहुत चिंता का विषय था.. खासकर १०वीं और १२वीं कक्षा के छात्रों के लिए।

इसके लिए यूएसए के कल्पना एवं जयदेव देसाई ने १९ सेल फोन दिये हैं, जिससे ये छात्र अपनी ऑनलाइन शिक्षा जारी रख सकें। इस उदारता के लिए उनका बहुत बहुत धन्यवाद!

श्रीमती नवनीता द्वारा स्मार्टफोन वितरण

बालवाटिका कक्षाएँ भी ऑनलाइन

कार्यपत्रक

बालवाटिका के शिक्षक अपने नन्हें छात्रों को WhatsApp Group के माध्यम से शिक्षण सत्र, वीडियो, कार्यपत्रक और चित्र भेज रहे हैं, जो असाइनमेंट पूरी करके अपने शिक्षक से व्यक्तिगत प्रतिक्रिया प्राप्त करते हैं।

माता-पिता अपने बच्चों पर इसके सकारात्मक प्रभाव को देखकर, इस पद्धति के प्रति आश्वत हो रहे हैं।

चित्रकला

वसंत विहार में १०० छात्रों के लिए WhatsApp द्वारा ट्यूशन

नई दिल्ली में अर्पणा के 'वसंत विहार ट्यूशन केंद्र' द्वारा कक्षा १ से ९ तक के सभी छात्रों के लिए ऑनलाइन कक्षाएँ संचालित की जा रही हैं। समय समय पर छात्रों को बुला कर उन्हें कुछ असाइनमेंट दिये जाते हैं।

कक्षा १ के छात्रों के लिए नये प्रवेश भी WhatsApp पर हुए

केन्द्र में पुरस्कार एवं असाइनमेंट प्राप्त करते हुए

अवीवा पीएलसी, यूके (बालवाटिका), एस्सेल फाउंडेशन, नई दिल्ली (सीनियर कक्षाएँ), टेक्निप इंडिया (प्राइमरी कक्षाएँ), केयरिंग हैंड फॉर चिल्ड्रन, यूएसए (मिडिल कक्षाएँ) और अर्पणा कनाडा (मिडिल कक्षाएँ) से शिक्षा में समर्थन के लिए गहरा आभार!

ग्रामीण सशक्तिकरण

जलशक्ति द्वारा जीवन परिवर्तन

हिमाचल प्रदेश के ४ दूरदराज़ के गाँव, धनोटा, हुरेड, छबड़ी और भाखंडा अत्यंत ग़रीबी में जकड़े हुए थे। **ग्वेर्नज़े ओवरसीज़ एंड कमीशन, यूके,** की सहायता से ४ पानी के टैंक और सिंचाई प्रणालियों के निर्माण द्वारा फसलों में विविधता लाने और उनकी आय बढ़ाने में सक्षम बनाया जा सकेगा। अर्पणा की टीम की सहायता एवं पूर्ण समुदाय की भागीदारी से सभी ४ पानी के टैंक सफलतापूर्वक एवं बहुत ही संतोषजनक ढंग से निर्मित हो गये हैं।

ग्वेर्नज़े (Guernsey) के लोगों के लिए अतीव धन्यवाद!

भाखंडा पानी का टैंक

'बड़ागाँव' में शराब एवं नशा-मुक्त भारत के लिए जागरूकता रैली

१७ नवम्बर को गाँव, **बड़ा गाँव** में अर्पणा के महिला स्व-सहायता समूहों की जनशक्ति फेडरेशन एवं करनाल ज़िला प्रशासन की सहायता से 'शराब एवं नशा-मुक्त भारत' का अभियान चलाने के लिए जागरूकता रैली का आयोजन किया गया।

भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय की वेबसाइट पर अर्पणा

शराब एवं नशामुक्त भारत के अभियान के अन्तर्गत, उप कमिशनर ने अर्पणा के २७ गाँवों के स्व-सहायता समूहों की ग्रामीण ५०० महिलाओं द्वारा रैली की शुरुआत की।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अनुदान के लिए टाइड्ज़ फाउंडेशन एवं इन्टरनैशनल डिज़ास्टर एण्ड रिलीफ़ फण्ड (IDRF), **यूएसए, को हमारी गहरी कृतज्ञता!**

अर्पणा अस्पताल

अस्पताल की वर्षगांठ

२ अक्तूबर को, अर्पणा के सदस्यों, डॉक्टरों और कर्मचारियों ने अर्पणा अस्पताल की ४०वीं वर्षगांठ मनाई, जिसे ग्रामीण लोगों की आधुनिक चिकित्सा देखभाल की आवश्यकता को पूरा करने के लिए स्थापित किया गया था।

आज अर्पणा अस्पताल एक बहु-विशिष्ट सुविधा है जो योग्य डॉक्टरों और आधुनिक उपकरणों के साथ ५०० से भी अधिक गाँवों की सेवा में कार्यरत है।

रंगीला का शिशु

रंगीला एवं उसका पति विजय, जो टाइलें लगाने का काम करता है, घरौंडा में रहते हैं। यह उसकी पहली गर्भावस्था थी और वह सरकारी अस्पताल में सामान्य जाँच के लिए जाती थी। उसके चेकअप के दौरान डॉक्टर ने जटिलताओं से घबराकर उसे अर्पणा अस्पताल को रेफर कर दिया।

यहाँ आने पर अर्पणा की स्त्री रोग विशेषज्ञ ने उसकी तुरन्त जाँच की जिससे पता लगा कि रंगीला को एनीमिया है एवं बच्चे को भी कठिनाई हो रही है।

माँ और बच्चे को बचाने के लिए उसी रात सीज़ेरियन किया गया और रंगीला ने एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया।

रंगीला एवं उसका परिवार अपने इलाज से बहुत ख़ुश हुए और अपने बिल पर अर्पणा द्वारा भारी छूट पाने से राहत महसूस की।

ग़रीब मरीज़ों की चिकित्सा देखभाल को प्रायोजित करने के लिए 'बैजनाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट' का गहरा आभार!

Your compassionate support sustains Arpana's Services

Arpana Trust and Arpana Research & Charities Trust are both approved under Section 80G of the Income Tax Act, 1961, giving 50% tax relief for donors in India.
FCRA Registration No. for Arpana Trust is 172310001
FCRA Registration No. for Arpana Research & Charities Trust is 172310002

Send your contribution for dissemination of humane values & medical and community welfare services in Delhi to:

Arpana Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037

Send your contributions for health & development services in Haryana & Himachal to:

Arpana Research & Charities Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037

Send contributions in USA to:

Mr. Vinod Prakash, President, IDRF, 5821 Mossrock Drive, North Bethesda, MD 20852
Mr. Jagjit Singh, AID for Indian Development, 84 Stuart Court, Los Altos, CA 94022-2249

Send contributions to Arpana Canada:

c/o Mrs. Sue Bhanot, 7 Scarlett Drive, Brampton, Ontario L6Y 3S9, Canada

Please let us know by email or telephone, whenever you transfer funds to Arpana.

Information & Resources Office: 91-184-2390905 **Executive Director:** 91-9818600644
emails: **at@arpana.org and arct@arpana.org**

Contact person: Mrs. Aruna Dayal, Director Development. Mobile 91-9991687310
Websites: **www.arpana.org** **www.arpanaservices.org**